-: तृतीय अध्याय :-

[illegible] का [illegible] - परिचय

१) कथावस्तु

२) दार्शनिक विचार

३) कला पक्ष

तृतीय अध्याय

नंददास का 'भँवरगीत' - परिचय ---

हिन्दी साहित्य का भक्तिकाल धार्मिक दृष्टि से सगुण और निर्गुण के विवाद का युग है । एक ओर सूफी संत लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक परमात्मा की प्राप्ति का संदेश देते थे, तो दूसरी ओर इस्लाम धर्मी लोग शस्त्र और धन के आधार पर उनके धर्म को स्वीकार करने के लिए कह रहे थे । इसीकारण हिन्दू जनता सूफी संतों को श्रद्धा की दृष्टि से देखती थी । इन धाराओं के सिवा उत्तर भारत की धार्मिक परिस्थितिओं के कारण निर्गुण भक्ति की स्थापना हुई थी । देश की विचित्र परिस्थितिओं में हिन्दी साहित्य के संत काव्य ने जो महत्वपूर्ण कार्य किया है, वह निश्चित ही असाधारण है । इन संतों ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को मान्य ऐसे सामान्य भक्तिमार्ग की स्थापना की । इसमें सिर्फ हिन्दुओं और मुसलमानों के धर्म का ही समन्वय नहीं है, तो नाथपंथिओं के हठयोग, वेदांतियों के ज्ञानवाद ,सूफियों के प्रेमवाद, वैष्णवों के अहिंसावाद का भी समन्वय है । ये निर्गुणवादी संत वेद, ब्राह्मण, मुल्ला, कर्मकाण्ड ,तीर्थाटन नमाज, मूर्तिपूजा आदि का विरोध करते थे परन्तु कबीर पंथ की भक्ति में हृदय पक्ष सबल न होने के कारण लोगों को इस पंथ ने अधिक काल तक आकर्षित नहीं किया ।

निर्गुण भक्तकवियों ने ब्रह्म-प्राप्ति के लिए योग-साधना,आचार-विचार आदि पर अधिक बल दिया । कबीर का निर्गुण ब्रह्म निराकार, इंद्रियातीत था । उसे प्राप्त करने के लिए ज्ञान,ध्यान,तपस्या,सर्वस्व त्याग आदि की आवश्यकता थी । निर्गुण ब्रह्म की ये बातें साधारण,अनपढ जनता की समझ में नहीं आती थी । यह ज्ञान मार्ग कष्टसाध्य था । वल्लभाचार्यजी ने तत्कालीन जनता की यह स्थिति जान ली । परिणामस्वरूप उन्होंने भगवान के सगुण स्वरूप का प्रसार किया । जनता

को भी ऐसे भगवान की चाह थी कि जो उनके सुख - दुःख में साथ दे सके और संकट के समय शक्तिशाली बनकर रक्षा कर सके । ऐसे समय सगुण धारा में लोकरक्षक राम और लोकरंजक कृष्णा की उपासना शुरु हो गयी । इस उपासना में भक्ति को महत्व दिया गया । ब्रह्म की पूजा, उपासना, स्तुति, वंदना तथा अर्चना आदि के द्वारा ही मनुष्य भगवान की प्राप्ति का प्रयत्न करने लगा । ज्ञान पक्ष शुष्क तथा नीरस है, उसका संबंध मनुष्य के मस्तिष्क से है । इसके विपरित भक्ति पक्ष का संबंध मनुष्य के हृदय से होने के कारण लोग इसी पक्ष की ओर अधिक आकृष्ट हुये । इसीकारण निर्गुण-निराकार की अपेक्षा सगुण-साकार को अधिक महत्व दिया गया । इसी विषय को लेकर हिन्दी में भ्रमरगीत लिखने की परंपरा शुरु हुई । ` भ्रमरगीत का मूल उद्देश्य है ज्ञान पर प्रेम की, मस्तिष्क पर हृदय की विजय दिखाकर निर्गुण निराकार की उपासना की अपेक्षा सगुण साकार ब्रह्म की भक्ति भावना की श्रेष्ठता का प्रतिपादन । ` [१]

भ्रमरगीत परंपरा में सूरदासजी के बाद नंददासजी का स्थान महत्वपूर्ण है । नंददास की रचनाओं में ` भँवरगीत ` यह एक सुंदर रचना है । उस काल के लगभग सभी कवियों ने अपने भ्रमरगीत के लिए भागवत का ही आधार लिया है । नंददासजी ने भी अपने ` भँवरगीत ` के लिए भागवत के ४७ वें अध्याय का ही आधार लिया है । नंददासजी भी सगुण ब्रह्म के सामने निर्गुण ब्रह्म की अनुपयोगिता स्पष्ट करना चाहते हैं । उन्होंने प्रेम और भक्ति की, ज्ञान पर विजय दिखलाई है । उनके इस ` भँवरगीत ` में ज्ञान, भक्ति, योग, दर्शन, कर्म आदि का सुंदर समन्वय हुआ है । ` साहित्य, भक्ति और दर्शन तीनों के योग की जैसी दिव्य छटा उनकी इस रचना में है वैसी भँवरगीत के सूरदास के पदों में भी नहीं । वहाँ साहित्य की वचनभंगिमा है, भक्ति की भावप्रवणता है, पर दर्शन का सूक्ष्म तर्क नहीं है । ` [२] उद्धव गोपी संवादों के माध्यम से नंददासजी ने अपने दार्शनिक विचारों को आकर्षक रुप में चित्रित किया है । गोपियों के उपालंभ, व्यंग्य तथा विरहभावना का चित्रण भी अत्यंत सुंदर बन पडा है । सुंदर भाषा के माध्यम से अपने विचारों की अभिव्यक्ति अत्यंत सरल तथा सहज बन गई है । इसीसे कहा जाता है --
` आन कवि गढिया , नंददास जडिया । `

सूरदास तथा अन्य भ्रमरगीतकारों ने व्यापक रूप में भ्रमरगीत का चित्रण किया है, लेकिन नंददासजी ने केवल ७५ पदों में गागर में सागर भरने का कार्य किया है। सूरदासजी ने या अन्य भ्रमरगीतकारों ने भ्रमरगीत का विशदता से चित्रण किया है। नंददासजी ने उसी भाव को केवल ७५ पदों में ही चित्रित किया है, फिर भी इन पदों में कहीं भी नीरसता तथा शिथिलता नहीं आई है। गोपियों का प्रेम, वियोग की आंतरिक दशाओं का चित्रण प्रभावी भाषा में किया गया है। ` नंददासजी ने समस्त वार्तालाप को ही तर्क - वितर्क के रूप में चलाते हुए समस्त वर्णन इतनी भावुकता की पूर्णता के साथ किया है कि काव्य-कौशल की दृष्टि से मनोमुग्धकारी है ही, उसका प्रभाव भी अक्षुण्ण पडता है। `[3] नंददास का ` भँवरगीत ` भावों की दृष्टि से भी उत्कृष्ट काव्य है। कृष्ण की निष्ठुरता, भौंरे के समान रसलोलुप वृत्ति आदि का जो चित्रण किया है, वह आकर्षक बन गया है।

नंददासजी ने अपने ` भँवरगीत ` का आरंभ नाटकीय ढंग से किया है। उद्धव और गोपियों के संवादों के द्वारा ` भँवरगीत ` की शुरुआत हो गयी है। उद्धव और गोपियों के संवाद शास्त्रीय बन चुके हैं। उन्होंने अपने ` भँवरगीत ` के माध्यम से सगुण ब्रह्म का साकार चित्र अंकित किया है। साथ ही इसके माध्यम से सामान्य जनता में चेतना निर्माण कर दी। गोपी-विरह के माध्यम से युग-युग से पीडित नारी की मौन व्यथा को भी अभिव्यक्ति दी। उन्होंने अपने ` भँवरगीत ` में निर्गुण-सगुण ब्रह्म पर जो तर्क दिये हैं, उनका सामाजिक, दार्शनिक, राष्ट्रीय, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व भी है। इस कारण ` भँवरगीत ` का प्रसंग पारंपारिक होते हुए भी इसके प्रति कौतूहल निर्माण होता है।

नंददासजी ने अपने ` भँवरगीत ` के लिए ` श्रीमद्भागवत ` आधार लिया है, परन्तु कवि ने इसका सिर्फ अनुवाद नहीं किया है। इसमें उन्होंने बहुत कुछ परिवर्तन किया है। भागवत में यह प्रसंग दशमस्कंध के ४६ वें तथा ४७ वें अध्याय में आ गया है। ४६ वें अध्याय के श्रीकृष्ण की ब्रजस्मृति, उद्धव को गोपियों को समझाने के लिए ब्रज भेजना, ब्रज में उद्धव का गोपियों द्वारा स्वागत, उद्धव - नंद -

यशोदा - मिलन आदि प्रसंगों को नंददासजी ने छोड दिया है । इन प्रसंगों को उन्होंने स्पर्श तक नहीं किया है । भागवत में कृष्ण उद्धव को यशोदा और गोपियों का विरह दूर करने के लिए भेजते हैं, परन्तु 'भँवरगीत' में उद्धव अपने आने का उद्देश्य स्वयं ही बताते हैं । 'भँवरगीत' का आरंभ भागवत के तीसरे श्लोक से आरंभ होता है । उद्धव के ब्रज आने का एकमात्र उद्देश्य ज्ञान, कर्म और योग द्वारा गोपियों को निर्गुण ब्रह्म का उपदेश देना है, इसलिये वे सिर्फ गोपियों से मिलना चाहते हैं । वहाँ आने के बाद जल्द ही वे गोपियों को उपदेश देना शुरु करते हैं । भागवत में गोपियों की चरण - धूलि की उद्धव कामना करते हैं परन्तु इसमें ज्ञान और योग का खण्डन नहीं है । 'भँवरगीत' में गोपियाँ अपने तर्कों के माध्यम से ज्ञान - योग का खण्डन और प्रेम तथा भक्ति का मण्डन करती हैं ।

इस प्रकार 'भागवत' तथा 'भँवरगीत' के अनेक प्रसंगों में भेद है ।

'भँवरगीत' की कथावस्तु ---

कृष्ण ने अपने बचपन तथा किशोरावस्था के दिन गोपियों के साथ बिताये थे । वे गोपियों के साथ खेलते - नाचते - गाते थे । एक दिन वे इन गोपियों को छोडकर मथुरा चले जाते हैं । उनके जाते ही गोपियाँ विरह में व्याकुल हो जाती हैं । इसी विरह को दूर करने के लिए कृष्ण उद्धव को गोकुल भेजते हैं ।

नंददासजी 'भँवरगीत' का प्रारंभ

'ऊधौ को उपदेश सुनौ ब्रजनागरी ।'

ऐसे संवाद के माध्यम से करते हैं । वे गोपियों के रूप, गुण, लावण्य तथा शील की प्रशंसा करने लगते हैं । वे गोपियों को गुणों की खान कहते हैं । आगे उद्धव उनके प्रेमी हृदय का गुण गाते हुए उन्हें सुखों का निर्माण करनेवाली कहते हैं । इसप्रकार उद्धव पहले गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं । वे गोपियों को कृष्ण का प्यारा संदेश एकांत स्थान पर कहना चाहते हैं । वे ऐसे स्थान की खोज में रहते हैं । वे गोपियों से कहते हैं, 'मैं कृष्ण का संदेश सुनाकर जल्द ही मथुरा लौट जाऊँ ।'

उद्धव के मुख से कृष्ण का संदेश सुनकर गोपियाँ अपने घर की याद तक भूल जाती हैं। उनका हृदय आनंद से भर जाता है। उनके शरीर का रोम - रोम खिल उठता है। उनकी आँखों में आँसू भर आते हैं ---

' सुनत स्याम कौ नाम बाम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनंद रस-हृदय प्रेम-बेली द्रुम फूली ।।
पुलक रोम सब अँग भए,भरि आए जल नैंन ।
कंठ घुटे गद्गद गिरा बोल्यौं जात न बैंन ।।
विवस्था प्रेम की ।।' [4]

गोपियों ने उद्धव को अर्घ्य चढ़ाकर आसन पर बिठा दिया। उद्धव की प्रदक्षिणा करके उसका स्वागत-सत्कार करके कृष्ण और बलराम के समाचार पूछे। उद्धव कुशल समाचार सुनाते हैं और कहते हैं कि मैं भी तुम्हारी कुशलता पूछने आया हूँ। तुम अधीर मत हो, कृष्ण थोडे ही दिनों में मिलेंगे। कृष्ण का यह संदेश देने के लिए ही वे आये थे। कृष्ण के आगमन का संदेश सुनकर गोपियों को कृष्ण की याद आने लगी। कृष्ण को याद करते - करते वे मूर्च्छित होकर धरती पर गिर पडीं। यह देखकर उद्धव ने उनके मुख पर जल के छींटे दिये। संदेश देते - देते वे उन्हें जागृत करने का प्रयत्न करने लगा।

गोपियों के जागृत होने के बाद उद्धव - गोपी संवाद प्रारंभ हो जाता है। उद्धव गोपियों से कहने लगे कि कृष्ण वास्तव में तुम से दूर नहीं हैं। ज्ञान की आँखों से देखने पर वे तुम्हें अपने पास ही दिखाई देंगे। इस सारे विश्व में उनका ही रूप व्याप्त है। सृष्टि के कण-कण में वे भरे हुए हैं। लकडी ,जल,थल, पृथ्वी,आकाश,जड - चेतन आदि सभी में कृष्ण की ही ज्योति का प्रकाश फैला हुआ है। इस सृष्टि को निर्माण करनेवाले भगवान के न कोई माता है, न पिता। वे निराकार तथा निर्विकार हैं। उन्हें सत्, रज, तम ये गुण प्रभावित नहीं करते। इस भगवान के हाथ,पैर,नयन,वाणी आदि कुछ नहीं है। वे सारे विश्व के प्राण हैं। वेदों में उनका वर्णन 'नेति-नेति' ऐसा किया गया है। तुम जिस सगुण रूप

में उनका ध्यान करती हो, वह असली रूप नहीं है । संसार में जो कुछ दिखाई देता है, वह माया के कारण ही दिखाई देता है । ब्रह्म इन सभी पदार्थों से भिन्न है । इसलिए निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करना मनुष्य का कर्तव्य है । यह प्राप्ति मनुष्य ज्ञान, योग और कर्म द्वारा ही कर सकता है । संयम, नियम, ज्ञान, योग आदि के द्वारा मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है । इसलिए तुम अपनी आत्मा को उसमें लीन करो ।

उद्धव की ये ज्ञान से भरी बातें गोपियों की समझ में नहीं आयीं । जिस कृष्ण को उद्धव निराकार, निर्विकार कह रहे थे, उसी कृष्ण ने गोपियों को प्रभावित किया था । इसलिए गोपियाँ उद्धव की बात मानने के लिए तैयार नहीं होती । कृष्ण की अनेक लीलाओं ने उन्हें प्रभावित किया था । वे कहती हैं कि अगर कृष्ण के मुख नहीं था तो उन्होंने मक्खन कैसे खाया ? अगर उनके पैर नहीं थे, तो वे अपनी गायों के साथ वन में कैसे दौड़ते थे ? आँखें नहीं थीं तो आँखों में काजल कैसे दिया था । उन्होंने अपने हाथ पर गोवर्धन पर्वत भी उठा लिया था । हम तो उन्हें नंद-यशोदा का पुत्र समझती हैं । गोपियों को उद्धव की बातों पर विश्वास ही नहीं आता । सगुण ब्रह्म को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त करना उन्हें प्रेम-अमृत को छोड़कर धूल प्राप्त करने जैसा लगता है । गोपियों के 'धूरि' शब्द को पकड़कर उद्धव धूल का महत्व बताने लगते हैं --

धूरि-बुरी जौ होइ ईस क्यों सीस चढावै ।
धूरि क्षेत्र में आइ कर्म करि हरिपद पावै ।।
धूरहिं तें यह तन भयो धूरहि सों ब्रह्मांड ।
लोक चतुर्दस धूरि के सप्तद्वीप नव खण्ड ।।
सुनौ ब्रजनागरी ।।[5]

धूलि यदि बुरी होती तो महादेव शंकर क्यों अपने सिर पर लगाते ? इस धूल क्षेत्र पर, भूमि पर आकर, कर्म करके मनुष्य भगवान को प्राप्त कर सकता है । धूल से ही मनुष्य का शरीर बना है । सृष्टि भी धूल से ही बनी है । इतना ही नहीं तो चौदहों लोक, सातों द्वीप और नौ भूखण्ड धूल से ही बने हैं ।

इस पर गोपियाँ कहती हैं कि कर्म - धर्म या कर्म धूल की बात कर्म अधिकारी याने कर्मवादी लोग ही जानते हैं। वे ही अपनी कर्म की धूल को लाकर प्रेम के निर्मल अमृत में मिलाया करते हैं। जब तक हृदय में कृष्ण नहीं है, तब तक कर्म है। कर्म के बन्धन में बन्धे हुए संसार के सभी जीव भगवान से दूर हो जाते हैं। इस कर्म के साथ ही पाप -पुण्य आ जाता है। यही कर्म लोहे और सोने की बेडी बनता है। कर्म वास्तव में एक बन्धन ही है। अच्छे कर्म करने से स्वर्ग और नीच कर्म से नरक मिलता है, परंतु शुद्ध प्रेम के बिना वास्तव में सब विषय - वासना के रोग में मरा करते हैं। प्रेम के बिना सब व्यर्थ है। हम कृष्ण से प्रेम कर अपने घर में ही ब्रह्म की पूजा करती हैं। निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करना घर आये नाग की पूजा न करके बाँबी पूजने के लिए जाने के समान है। कृष्ण ही परब्रह्म हैं, यह सृष्टि उन्हीं का प्रतिबिंब है ---

"जोगी जोतिहिं भजैं भक्त निज रूपहिं जानैं।
प्रेमपियूषै प्रगटि स्यामसुंदर उर आनैं।।
निर्गुण गुण जो पाइयैं लोग कहैं यह नाहिं।
घर आये नाग न पूजैं बाँबी पूजन जाहिं।।

सखा ! सुनि स्याम के।।"[६]

गोपियाँ कहना चाहती हैं कि श्रीकृष्ण जो साक्षात् परब्रह्म हैं, जिन्होंने सगुण रूप में अवतार लिया है, उनकी उपासना सरल और सहज है। उन्हें छोडकर निर्गुण, निराकार,कष्टसाध्य ब्रह्म को पूजने जाने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्यक्ष सगुण ब्रह्म को छोडकर निर्गुण की उपासना करना उचित नहीं लगता।

उद्धव अपना तर्क देते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण यदि सगुण होते तो वेद उनको 'नेति-नेति' कहकर नहीं बुलाते। उपनिषद में उनको सगुण और निर्गुण दोनों माना गया है; परंतु सत्य बात तो यह है कि परब्रह्म निर्गुण है। माया के कारण ही वह सगुण दिखाई देता है। ऐसे गुणहीन के भी गुण ढूँढने का अगर प्रयत्न किया जाए तो निराशा ही हाथ आयेगी। आकाश की तरह परब्रह्म

बिना आधार, बिना गुन के हैं। वेद भी उनके गुण और रूप का रहस्य समझाने में असमर्थ हैं। माया के सत्, रज, और तम ये गुण हैं तो परब्रह्म के गुण सत्, चित्, आनंद हैं। ब्रह्म के गुण और रूप का रहस्य कोई नहीं जान सका। इसलिये वेद और उपनिषादों में परब्रह्म को निर्गुण कहा गया है।

गोपियाँ उद्धव के इस तर्क को मानती नहीं। वे कहती हैं --

" जो उनके गुन नाहिं और गुन भये कहाँ तैं।
बीज बिना तरु जमैं, मोहिं तुम कहौ कहाँ तैं।।
वा गुन की परछाँह री, माया दर्पण बीच।
गुन तैं गुन न्यारे भये, अमल बारि मिलि कीच।।
सखा सुनि स्याम के।। " [७]

यदि परमात्मा के गुन नहीं हैं तो फिर संसार में और गुणों की निर्मिति कैसे हो सकती है? बीज के बिना पेड उग नहीं सकता। संसार रूपी माया के दर्पण में उसी ब्रह्म के गुण की परछाई दिखाई देती है। गुण वास्तव में पृथक नहीं हैं तो माया रूप ब्रह्म के निर्मल जल में मिलने के कारण ये पृथक - पृथक दिखाई देने लगे हैं। कीचड से भरे जल से कीचड अलग हो जाए तो वह निर्मल दिखाई देता है। यही बात परब्रह्म के विषय में भी कही जा सकती है।

जब गोपियों ने ब्रह्म और जीव की अभिन्नता के बारेमें बता दिया, तब उद्धव ने उनके इस तर्क का भी खण्डन कर दिया। उद्धव ने कहा कि माया के गुन और ब्रह्म के गुण बिल्कुल अलग - अलग हैं। ब्रह्म के गुणों का रहस्य अभी तक कोई नहीं जान सका है। वेद और उपनिषादों में भी उन्हें निर्गुण कहा है।

इस पर गोपियाँ वेद और उपनिषाद असमर्थ क्यों हैं, इसका कारण बतलाती हैं। वे कहती हैं कि वेद भी ब्रह्म के ही स्वरूप हैं। ब्रह्मके श्वास के रूप में वेदों की निर्मिति हुई है। कर्म - क्रियाओं के कारण जीव ब्रह्म को भूल जाता है। कर्म के बीच में ब्रह्म को खोजने पर वह नहीं मिलता। इसके लिए कर्मरहित होने की आवश्यकता होती है। ज्ञान और कर्म से भी प्रेम का ही अधिक महत्त्व है।

उद्धव आगे प्रेम के बारेमें कहने लगते हैं। यदि किसी से प्रेम हो तो उसके रूप को देखते ही लगन लग जाती है, लेकिन जिसके पास यह दृष्टि नहीं, वह प्रेम को कभी प्राप्त नहीं कर सकता। परब्रह्म के संबंध में भी यही सत्य है। ब्रह्म के रूपसे अपरिचित रहने से उसे जाना नहीं जाता। उसके वास्तविक रूप को जानने के लिए प्रेम की दृष्टि आवश्यक होती है ---

" प्रेमहि कैं कोउ वस्तु रूप, देखत लौ लागै।
वस्तु दृष्टि बिन कहौं,कहा प्रेमी अनुरागै।।
तरनि चंद्र के रूप कौं, गुन नहि पायौ जान।
तो उनको कहा जानियैं, गुणातीत भगवान"।।
सुनौ ब्रजनागरी।।

परब्रह्म के गुण जानना वास्तव में इतना सरल काम नहीं है। आकाश के चंद्र और सूर्य का वास्तव ज्ञान अभी तक मनुष्य समझा नहीं सका है। मनुष्य का ज्ञान मर्यादित होता है। इसी कारण अध्यात्मिक शक्ति के बिना ब्रह्म को जाना नहीं जाता। ज्ञान का असली विकास होने पर ही ब्रह्म समझा में आ जाता है।

इस पर गोपियाँ उत्तर देती हुई कहती हैं कि आकाश में सूर्य रहता है लेकिन अपने तेज के कारण वह दिखाई नहीं देता। उसके प्रकाश स्वरूप को देखने के लिए विशेष दृष्टि आवश्यक होती है। इस परम तेज को साधारण आँखों से देखना असंभव है। जिनके हृदय में श्रद्धा और विश्वास है वे ही इस रूप को देख सकते हैं; परंतु जिन व्यक्तियों के कर्म कुएँ में पडे हुए हैं, जिनके हृदय में श्रद्धा और प्रेम नहीं है, वे परब्रह्म के स्वरूप को देख नहीं सकते।

उद्धव कर्म को कूप नहीं समझाते। भक्ति को भी वे एक प्रकार का कर्म ही समझाते हैं। कर्म तो जीव को करना ही पडता है, ऐसा उनका कहना है। कर्म से किसी को भी छुटकारा नहीं मिलता। कर्म अगर योग्य पद्धति से किया जाए तो भक्ति का इसमें अपने आप समावेश हो जाता है। अच्छे कर्म करते - करते कर्म के दोष नष्ट हो जाते हैं। सद्कर्मों को करते रहने से फल की आशा नहीं रहती। उस

समय वह निष्काम कर्म करती हुई निर्गुण ब्रह्म में समा जाती है । ये - निर्गुण ब्रह्म - कृष्ण गुणमय पदार्थों से अलग हैं । ये गुणमय पदार्थ नश्वर हैं; परन्तु भगवान कृष्ण अनश्वर हैं ।

इतने दार्शनिक वाद - विवाद के बाद भी उद्धव जब सगुण ब्रह्म मानने के लिए तैयार नहीं होते तब अंत में गोपियाँ उद्धव से कहती हैं ---

" नास्तिक हैं जो लोग कहा जानैं निज रूपैं ।
प्रगट भानु को छाँडि गहैं परछाहीं धूपैं ।।
हमरैं तौ यह रूप बिन और न कछू सुहाय ।
जो करतल आमलक के कोटिक ब्रह्म दिखाय" ।।
सखा सुनि स्याम के ।।" [९]

जो लोग नास्तिक हैं, जिन्हें परमात्मा की सत्ता में विश्वास नहीं वे अपनी आत्मा को ही अच्छी तरह से नहीं जानते । ऐसे व्यक्ति सूर्य को छोडकर उसकी छाया को ही पकडने का प्रयत्न करते हैं । श्रीकृष्ण भी सूर्य के समान हैं । उनकी उपासना छोडकर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करना सूर्य की छाया को पकडने के समान है । हमें तो श्रीकृष्ण के इस रूप के सिवा कुछ अच्छा नहीं लगता । हमारा यह हरि इतना सामर्थ्यवान है कि तुम्हारे करोडों ब्रह्म इसकी हथेली पर रखे हुए आँवले के समान दिखाई देंगे । हमें तो कृष्ण के रूप बिना कुछ अच्छा नहीं लगता ।

इस प्रकार नंददास के "भँवरगीत" की गोपियाँ सगुण ब्रह्म के श्रेष्ठता का महत्व प्रतिपादन करती हैं । " नंददास की गोपियाँ विदुषी प्रतीत होती हैं । वे ब्रह्म, माया, जीव, जगत् के तत्वों से पूर्ण परिचित हैं । उद्धव के उपदेशों का वे सैद्धांतिक आधार पर ही खण्डन करती हैं । इस वाद-विवाद को सूर की गोपियों की भाँति परिहास में नहीं उडाती हैं, बल्कि गंभीर होकर अपने मत का प्रतिपादन करती हैं ।" [१०]

इस दार्शनिक तर्क - वितर्क के बाद नंददास के "भँवरगीत" का रसमय

रूप प्रारंभ हो जाता है । इसमें नारी - हृदय की सुंदर अभिव्यक्ति हुई है । उद्धव के साथ बातचीत करते समय पितांबर धारण किये हुए कृष्ण की मूर्ति गोपियों की आँखों के सामने आ जाती है । वे उद्धव की ओर मुँह मोडकर बैठ गईं। अपने भावजगत् में मानसिक मिलन द्वारा कृष्ण से वार्तालाप करने लगीं । प्रिय कृष्ण को देखकर वे दीन आवाज में कहने लगीं --

'अहो नाथ । रमानाथ और जदुनाथ गुसाईं ।
नंदनंदन बिडराति फिरत तुम बिनु बन गाईं ।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ ग्वालन सुधि लेहु ।
दुख जलनिधि हम बूडहीं कर अवलंबन देहु ।।
निठुर ह्वै कहा रहे ? ।।'[11]

कृष्ण के बिना गायें बन में इधर - उधर भटकती फिरती हैं । अब फिर से कृपालु होकर उनका दु:ख दूर क्यों नहीं करते ? हम दु:ख के सागर में डूब रही हैं । हमें अपने हाथ का आधार दे दो । इस प्रकार गोपियाँ पशु-पक्षी आदि के दु:ख का वर्णन करती हुई अपने विरह दु:ख को दूर करने के लिए कह रही हैं । इन गोपियों का सिर्फ मानसिक मिलन से समाधान नहीं होता । वे कृष्ण की मधुर मुरली का संगीत सुनना चाहती हैं । एक गोपी कहती है कि तुम दर्शन दो । बार - बार बन में छिपकर हमें घायल मत करो । यह सत्य है कि हमारी जैसी तुम्हें करोडों प्राप्त हो जाएँगी; परंतु हम लोगों के लिए तुम एक ही हो । प्यार की डोर को एक झटके में तोडना अच्छी बात नहीं है । यह दु:ख सहना हमारे लिए कठिन काम बन गया है ।

एक गोपी की अवस्था तो पानी के बिना तडपती हुई मछली के समान हो गई है । पानी के बिना जिस प्रकार मछली तडपती है, वैसी ही गोपियाँ कृष्ण के बिना तडपने लगी हैं । कोई गोपी कहती है कि श्याम मथुरा का राज्य प्राप्त करके इतरा गये हैं । तुम्हें प्राप्त हुई प्रभुता कोई अनोखी चीज नहीं है । यह तो तुम्हारे जैसे बहुतों को प्राप्त हुई है । फिर तुम ही इतना अहंकार क्यों करते हो ? तुम्हारे पराक्रम से बडे - बडे शक्तिशाली लोग भी संसार में डरते थे । हम तो

अबला थीं, तो फिर हम क्यों नहीं डरतीं । –

कोउ कहै अहो स्याम कहा इतराय गये हो ।
मथुरा को अधिकार पाइ, महाराज भये हो ।।
ऐसे कछु प्रभुता अहो जानत कोऊ नाहि ।
अबला बुधि सुनि डरि गई बडे बली जग माँहि ।।
पराक्रम जानि के ।।*१२

कोई गोपी कृष्ण की लीलाओं को स्मरण करती हुई कहती है कि यदि तुम तडपा-तडपाकर मारना चाहते थे तो गोवर्धन धारण कर इंद्र के क्रोध से तुमने हमारी रक्षा क्यों की ? उस प्रलय में हम डूबकर मरतीं तो इसप्रकार विरह में घुट-घुटकर मरने का कष्ट तो हमें उठाना नहीं पडता । कोई गोपी उनकी निष्ठुरता का वर्णन करती हुई कहती है कि ये तो जन्म-जन्म से निष्ठुर हैं । पूतना का वध इन्होंने ही किया था । रामावतार के समय ताडका को इन्होंने मारा था । छल-कपट द्वारा राजा बलि का राज्य भी इन्होंने ही लिया था । प्रल्हाद का पक्ष लेते हुए निर्दोष हिरण्यकश्यपु का वध भी इन्होंने किया था । परशुराम के रूप में माता रेणुका की हत्या करके इन्होंने ही क्षत्रियों के रक्त से कुंड भर दिये । कृष्ण की निष्ठुरता जन्म-जन्मांतरों से चली आयी है । शिशुपाल की पत्नी का हरण भी कृष्ण ने ही किया है ।

इसप्रकार कृष्ण प्रेम में व्याकुल गोपियाँ अनेक प्रकार से व्यंग्य करने लगीं । वे अत्यंत भावुक बनकर सर्वत्र प्रियतम कृष्ण के रूप देखने लगीं । वे कृष्ण के विभिन्न रूपों और चरित्रों को देखने लगीं ।

गोपियों के प्यार को देखकर उद्धव का योग और ज्ञान बह गया । वे अपने ही ज्ञान पर लज्जित हो गये । वे प्रेमरस में डूब गये । उद्धव सोचने लगे कि ये गोपियाँ वंदना करने योग्य हैं । मैं तो इनकी चरण धूली के स्पर्श से ही धन्य हो जाऊँगा । वे कृष्ण का गुणगान करने लगे । जिसकारण गोपियाँ प्रसन्न हो जायेंगी, वही बात करने का वे प्रयत्न करने लगे ।

उद्धव इसप्रकार विचार करने लगे थे कि वहाँ पर एक भ्रमर उडता हुआ आया । वह गुनगुनाता हुआ गोपियों के चरणों पर कमल समझकर बैठ गया । मानो, उद्धव का मन ही मधुकर बनकर प्रकट हो गया । फिर गोपियाँ भ्रमर को ही कृष्ण मान कर उपालंभ देने लगीं । भ्रमर के वर्ण तथा स्वभाव साम्य के आधार पर वे कभी कृष्ण के कुब्जा-प्रेम पर व्यंग्य करती हैं, तो कभी उद्धव के निर्गुण ब्रह्म की हँसी उडाती हैं। परंतु इस उपालंभ से गोपियों को और भी अधिक पीडा होती थी । कुब्जा के कारण उनके मन में सौतिया डाह निर्माण होता है । एक गोपी ने उद्धव को लक्ष्य करते हुए कृष्ण को उपालंभ देना शुरू किया --

" कोऊ कहै रे मधुप तुमैं लाजौं नहिं आवति ।
स्वामी तुम्हरौ स्याम कूबरी दास कहावत ।।
इहाँ ऊँची पदवी हुती गोपीनाथ कहाय ।
अब जदुकुल पावन भयौ दासी जूठन खाय ।।
मरत कहा बोल को ।। " [१३]

हे भौंरे । तुम्हें लज्जा आनी चाहिए । तुम्हारा स्वामी कृष्ण कूबरीदास कहलाता है । जब तक हमारे पास था, तब तक उसे गोपीनाथ कहा जाता था । यहाँ उनके लिए ऊँची पदवी थी, परंतु अब यादव - कुल कृष्ण के द्वारा दासी की जूठन खा लेने के बाद पवित्र हो गया ।

एक गोपी कहती है कि हे मधुप । तुम्हें मधुकर कहना योग्य नहीं लगता । तुम तो मधु के स्थान पर प्रेमियों का वध करनेवाले लगते हो । तुम विचाररूपी योग की गाँठ लिए फिरते हो । तुमने अनेक लोगों का खून पी लिया है । इसीकारण तुम्हारे अधर लाल रंग के हो गये हैं । तुम अब ब्रज में किसका वध करने के लिए आये हो ? तुम अब कृपा करके यहाँ से चला जाओ ।

दूसरी गोपी कहने लगी कि अरे भौंरे । तू प्रेम की बातें समझ नहीं सकेगा । तू एक फूल से उडकर दूसरे फूल पर इसप्रकार अनेक फूलों पर बैठा रहता है । किसी एक से प्यार करने का तेरा स्वभाव नहीं है । तू सभी को अपने जैसा ही समझता है । तूने कभी किसी के प्रेम को जाना ही नहीं ।

कोई एक गोपी कृष्ण, उद्धव और कुब्जा इन तीनों पर व्यंग्य करती हुई कहती है कि जिनके तुम्हारे जैसे साथी होते हैं, उनके सभी कार्य काले ही होते हैं। वास्तव में कृष्ण को गोकुल में कोई जोडी नहीं मिली। वे स्वयं त्रिभंगी थे, वैसी ही त्रिभंगी कुबरी नारी उन्हें मथुरा में मिल गई। --

"कोऊ कहै रे मधुप होहिं तुमसे जो संगी।
क्यों न होो तन स्याम सकल बातन चतुरंगी ।।
गोकुल में जोरी कोऊ पावत नाहिं मुरारी।
मनो त्रिभंगी आपु हैं करी त्रिभंगी नारी ।।
रूप गुन सील की ।।" १४

कृष्ण के काले वर्ण पर व्यंग्य करती हुई एक गोपी ने कहा कि संसार में जितने काले लोग होते हैं वे सब कपटी और कुटील हृदयवाले होते हैं। एक श्याम के स्पर्श से अभी तक शरीर जल रहा है, इसमें यह काला भौंरा हमारे चरणों को स्पर्श कर हमें और जला रहा है। दया नाम की कोई चीज ही इनके पास नहीं है --

"कोऊ कहै सखि बिस्व माहिं जेतिक हैं कारे।
कपट कोटि के परम कुटिल मानुस बिषवारे ।।
एक स्याम तन परसि कै जरत आजु लौं अंग।
ता पाछे फेरि मधुप यह लायो जोग भुअंग ।।
कहा इनको दया ।।" १५

इस प्रकार गोपियाँ उद्धव, कृष्ण तथा कुब्जा पर व्यंग्य करने लगीं। वे भगवान श्रीकृष्ण को भ्रमर का नाम देकर कुल की लज्जा और मर्यादा छोडकर उपालंभ देने लगीं। इसके बाद वे एक साथ दीन होकर 'हा! करुनामय नाथ हो! केसो! कृष्ण! मुरारि!' कहकर रोने लगीं। आँखों के आँसुओं के कारण उनके मुख, चोली, हार भीग गये। इस प्रेम की धारा में उद्धव स्वयं बह चले। वे कृष्ण

प्रेम में पागल गोपियों के दर्शन से कृतकृत्य हो गये । गोपियों की इस प्रेम-भक्ति को देखकर वे ब्रज के तृण, लता अथवा गुल्म बनने की अभिलाषा करने लगे --

"कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यहि बर माँगो जाय ।।
कृपा करि देहि जो ।।" १६

गोपियों का कृष्ण के प्रति ऐसा प्रेम देखकर उद्धव का ज्ञान-गर्व मिट जाता है । वास्तव में वे गोपियों को ज्ञान का संदेश देने आये थे लेकिन यहाँ आकर प्रेमी भक्त बन गये । गोपियों को धन्य कहने लगे । अपनी बुद्धि उन्हें व्यर्थ लगने लगी । गोपियों से वे क्षमायाचना करते हैं और स्वयं ही ज्ञान की अपेक्षा प्रेम को श्रेष्ठ बताते हैं ।

इसके बाद उद्धव मथुरा वापस लौट जाते हैं । वे भगवान कृष्ण के गुणों को भूल जाते हैं । गोपियों के प्यार से वे इतने प्रभावित हो गये कि वे गोपियों का ही गुणगान करने लगे । श्रीकृष्ण की निष्ठुरता पर उन्हें बहुत गुस्सा आया । वे जाकर कृष्ण से कहते हैं कि तुम्हारी रसिकता बिल्कुल झूठी है । तुम शीघ्र ही वहाँ जाकर उनका कष्ट दूर करो और ब्रज के लोगों को सुख दो । नहीं तो गोपियों के और तुम्हारे बीच जो स्नेह है, वह नष्ट हो जाएगा ।

उद्धव की ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण की आँखों में भी पानी भर आया । अत्यंत व्याकुल होकर वे अपनी सुध-बुध खो बैठे । उनके रोम-रोम में गोपियाँ व्याप्त हो गईं । ऐसा लगा कि उस समय श्रीकृष्ण स्वयं कल्पतरु थे और गोपियाँ उसकी पत्तियाँ थीं ---

"सुनत सखा के बैन नैन आए भरि दोऊ ।
बिबस प्रेम-आवेस रही नाहिंन सुधि कोऊ ।।
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात ।
काम तरोवर साँवरो ब्रजबनिता ही पात ।।
उलहि अँग अँग तें ।।" १७

बाद में हँसते हुए कृष्ण ने उद्धव से कहा कि मैंने तुम्हें ब्रज क्या भेजा और तुम वहाँ से आकर मेरे ही अवगुण दिखाने लगे । मुझमें और गोपियों में कण-भर भी अंतर नहीं है । जिसप्रकार जल में तरंग होते हैं, उसीतरह मेरा और गोपियों का रिश्ता है । ये कहते हुए कृष्ण ने अपने शरीर में एक-एक गोपी को प्रकट करके दिखा दिया और उद्धव का भ्रम दूर कर दिया ।

इसप्रकार कृष्ण की लीला का गान करके कवि नंददास धन्य हो गये । ज्ञान से ही परमात्मा की प्राप्ति होती है, ऐसी कोई बात नहीं तो प्रेम-भक्ति के द्वारा भी उसे प्राप्त किया जा सकता है । ` ईश्वर की प्राप्ति मनुष्य की विविध भावनाओं को सुलाकर ज्ञान और साधना के द्वारा ही नहीं हो सकती वरन् अपनी विविध संवेदनाओं से प्रेम - भाव की प्रगाढता को ईश्वरोन्मुख करके भी उससे सहज संबंध स्थापित किया जा सकता है । `[१८]

` भँवरगीत ` के दार्शनिक विचार ---

` भँवरगीत ` में नंददासजी ने अपने दार्शनिक विचारों का सुंदर विवेचन किया है । ` भँवरगीत ` की गोपियाँ पुष्टिमार्गीय भक्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं और उद्धव निर्गुणवाद के प्रतीक हैं । आत्मा संसार के दु:ख से मुक्त होकर परम - सुख की प्राप्ति किस प्रकार कर सकती है, इस तत्व की खोज में भारतीय दर्शनों की सृष्टि हुई है । नंददासजी ने वल्लभ-संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण पुष्टि-मार्गीय सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है । आचार्य वल्लभाचार्यजी ने ज्ञान, कर्म तथा योग में विश्वास करते हुए भी भक्तिमार्ग को ही प्रधानता दी है । मनुष्य अब कठिन योगसाधना नहीं कर सकता और मर्यादित कर्ममय जीवन भी व्यतीत नहीं कर सकता । संसार से दूर जाकर तत्वज्ञान प्राप्त करना उसे अच्छा नहीं लगता । इसलिये उन्होंने सर्वसुलभ भक्ति मार्ग को ही श्रेष्ठ माना है । इस मार्ग के द्वारा जीव संसार से आसानी से मुक्ति पा सकता है ।

आचार्य वल्लभ का मत ` पुष्टिमार्ग ` कहलाता है । भगवान के प्रेम को

प्राप्त करने का सबसे श्रेष्ठ साधन भगवान का अनुग्रह अथवा पुष्टि है, ऐसा उनका कहना था । नंददासजी पर वल्लभ-संप्रदाय का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है । वल्लभ - संप्रदाय के ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि संबंधी निम्नलिखित विचार हैं --

(१) ब्रह्म --

ब्रह्म की कृपा से यह संसार सागर पार किया जा सकता है । वे ब्रह्म को सर्वज्ञ, मायाधीश और स्वतंत्र मानते हैं । वह निर्गुण तथा सगुण भावना से युक्त भी हैं और मुक्त भी हैं । वल्लभाचार्यजी ने ब्रह्म को सत्, चित्, आनंद स्वरूप माना है । ब्रह्म सर्व शक्तिमान पुरुषोत्तम है ।

कृष्ण परब्रह्म तथा रस रूप हैं । वे धर्म रक्षक, उपदेशक तथा भक्तवत्सल हैं । वल्लभाचार्यजी ने कृष्ण के रस रूप को ही अपनाया है ।

(२) जीव --

जीव ब्रह्म का अंश है । आनंद के बिना वह दुःखी रहता है । ब्रह्म का अंश होने के कारण जीव भी अनादि तथा नित्य है । वल्लभाचार्यजी ने जीव की स्वतंत्र सत्ता मानी है । उनके अनुसार जीव सृष्टि दो प्रकार की होती है --

१) दैवी सृष्टि-दैवी जीव मुक्ति प्राप्त कर सकता है ।

२) आसुरी सृष्टि - इसके लिए मुक्ति असंभव होती है ।

दैवी सृष्टि के फिर से दो प्रकार होते हैं ---

१) पुष्टिसृष्टि

२) मर्यादासृष्टि ।

पुष्टि - सृष्टि को भगवान ने अपनी सेवा के लिए उत्पन्न किया है ।

(३) जगत् --

जगत् को वल्लभ-संप्रदाय ने सत्य माना है । इनके अनुसार जगत् ब्रह्म के सत् अंश से युक्त होने के कारण सत्य है । संसार जीव की सृष्टि है । इसलिये उसका नाश भी हो सकता है । इस प्रकार संसार और जगत् में भेद है ।

(४) माया --

इस संप्रदाय के अनुसार माया के दो भेद हैं --

१) विद्यामाया

२) अविद्यामाया -

विद्यामाया से ब्रह्म जगत् की रचना करता है और अविद्यामाया से जीव संसार की निर्मिति करता है। संसार के दुःख से छूटकर आनंद की प्राप्ति में अविद्यामाया बाधा बनती है।

(५) मोक्ष --

आनंद - प्राप्ति की अवस्था को 'मोक्ष' अथवा 'मुक्ति' कहा जा सकता है। मुक्ति प्राप्ति के अनेक मार्ग हैं -- सालोक्य (लोक में पहुँचना) सारूप्य, (रूप पाना), सामीप्य (समीप पहुँचना), सायुज्य (ब्रह्म में लय हो जाना) पुष्टि भक्ति के द्वारा जो जीव सायुज्य मुक्ति की अवस्था प्राप्त करता है, वह पूर्ण पुरुषोत्तम की नित्य लीला का आनंद उठाता है। वल्लभाचार्यजी के अनुसार मुक्तावस्था में जीव ब्रह्म में लीन हो जाता है।

नंददासजी ने वल्लभ-संप्रदाय के इन्हीं विचारों को अपने 'भँवरगीत' का विषय बनाया है। 'नंददास ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग, भक्तिमार्ग, निर्गुण और सगुण के स्वरूप - विश्लेषण में मनोयोगपूर्वक प्रवृत्त होते हैं और गूढ़ातिगूढ़ तथ्यों को काव्य के मधुर आवेष्टन में सफलतापूर्वक प्रस्तुत करते हैं।'[१९] नंददासजी ने 'भँवरगीत' के प्रारंभिक पदों में दार्शनिक विचारों को स्पष्ट किया है। इसमें उन्होंने वल्लभ-संप्रदाय के विचारों का ही प्रतिपादन किया है। निर्गुण ब्रह्म, ज्ञान, कर्म, मोक्ष आदि का विस्तृत विवेचन सुंदर बन गया है। इन विचारों के माध्यम से ज्ञान, योग आदि के स्थान पर भक्ति को ही ब्रह्म प्राप्ति का एकमात्र साधन माना है। उद्धव निर्गुण ब्रह्म के उपासक हैं और गोपियाँ प्रेम-भक्ति में मग्न कृष्ण के सगुण स्वरूप की उपासिका हैं। 'दर्शन से जटिल तथा शुष्क विषय को भी

नंददास ने काव्य - कौशल द्वारा इतनी चतुरता से व्यक्त किया है कि भँवरगीत का यह प्रसंग विचार - प्रधान होते हुए भी नीरस होने से बच गया है ।" [२०]

नंददासजी के 'भँवरगीत' में दार्शनिक विचार ---

ब्रह्म --

'भँवरगीत' में ब्रह्म के निर्गुण रूप का गोपियों द्वारा खण्डन किया गया है । उद्धव निर्गुण, ज्योतिस्वरूप परब्रह्म को ज्ञान द्वारा देखने का उपदेश देते हैं । उनका कहना है कि ज्ञान की आँखों से ब्रह्म के दर्शन होते हैं --

"वे तुमतें नहिं दूरि ग्यान की आँखिन देखो ।
अखिल बिस्व भरि पूरि रूप सब उनहिं बिसेखो ।।
लोह दारु पाषान में जल थल मही अकास ।
सचर अचर बरतत सबै जोति ब्रह्म - परकास ।।
सुनौ ब्रजनागरी ! ।।' [२१]

उद्धव गोपियों से ब्रह्म को ज्ञान की आँखों से देखने के लिए कहते हैं । सृष्टि के कण-कण में ईश्वर व्याप्त है । लोह, लकडी, पत्थर, जल, थल, पृथ्वी और आकाश तथा चर - अचर सभी प्रकार के जीवों में ब्रह्म का प्रकाश भरा रहता है ।

गोपियों को इस बात का विश्वास नहीं आता । गोपियाँ यह बात न समझते हुए भोले भाव से पूछती हैं --

"कौन ब्रह्म की जोति ग्यान कासों कहौ ऊधो ?
हमरे सुंदर स्याम प्रेम को मारग सूधो ।।' [२२]

हम नहीं जानती कि ब्रह्म कौन है ! ज्योति क्या है ? तुम्हारे इस ज्योतिस्वरूप ब्रह्म के विषय में हमारी समझ में कुछ नहीं आता । हमारे लिए तो सुंदर श्रीकृष्ण का प्रेममार्ग ही सरल है ।

उद्धव कहते हैं कि इस निर्गुण ब्रह्म के हाथ - पैर, नाक, आँखे नहीं हैं। वह निराकार हैं। गोपियाँ उद्धव की यह बात मानने के लिए तैयार नहीं होती। कृष्ण की सगुण लीलाओं को वे याद करने लगीं। कृष्ण की अनेक लीलाओं ने गोपियों को मुग्ध किया था। उद्धव की बातों पर सुंदर तर्क प्रस्तुत करती हुई वे उद्धव से प्रश्न करती हैं ---

" जो मुख नाहिंन हुतो कहौ किन माखन खायौ ?
पायन बिन गो संग कहौ को बन बन धायौ ?
आँखिन में अंजन दियौ, गोवरधन लियौ हाथ।
नंद - जसोदा पूत हैं कुँवर कान्ह ब्रजनाथ।।
सखा सुनि स्याम के।। " २३

उद्धव आगे कहते हैं कि इस परब्रह्म के माता-पिता कोई नहीं होते। यह सारी सृष्टि इसी ब्रह्म से उत्पन्न होती हैं और उसी में मिल जाती हैं। ये परब्रह्म लीला के लिए सगुण रूप में अवतार लेते हैं। इसपर गोपियाँ कहती हैं कि यदि गुण नहीं तो संसार सगुणात्मक कैसे निर्माण हुआ ? यह संसार ब्रह्म के गुणों की परछाई हैं। गुण से गुण अलग नहीं, माया के कारण ही वे अलग - अलग दिखाई देते हैं। ज्ञानी, योगी ज्योति का ध्यान करते हैं परन्तु भक्त उस ब्रह्म के रूप को जानते हैं। भक्त प्रत्यक्ष रूप से प्रेम का पान करते हुए, कृष्ण की मूर्ति को हृदय में समा लेते हैं।

इस प्रकार नंददासजी ने सगुण, साकार, रसमय रूप को ही परब्रह्म कहा हैं। वास्तविक वस्तु सगुण हैं और वही सारे जगत् में विद्यमान हैं।

२) जीव --

वल्लभाचार्यजी ने जीव और ब्रह्म में अद्वैतता स्वीकार की हैं। उसमें जीव अंश और ब्रह्म अंशी हैं। शरीर धारण करने के बाद जीव संसार में भटकता रहता हैं; परंतु मोक्ष प्राप्त होने पर वह फिर से ब्रह्म में विलिन हो जाता हैं। ज्ञानी उद्धव गोपियों के प्रेम से प्रभावित होकर मथुरा चले जाते हैं। वहाँ जाकर वे कृष्ण से ब्रज जाने का आग्रह करते हैं। तब कृष्ण गोपियों के साथ अपनी अद्वैतता व्यक्त करते हुए कहते हैं ---

" रोम - रोम प्रति गोपिका ह्वै गई साँवरे गात ।
कल्प तरोवर साँवरो ब्रजबनिता ही पात ।।
उलहि अँग अँग तें ।। " २४

मुझमें और गोपियों में क्षण-भर का भी अंतर नहीं है । जिस प्रकार गोपियाँ मेरे अंदर व्याप्त हैं, उसी प्रकार मैं भी गोपियों के हृदय - प्राणों में समाया हुआ हूँ । जिस प्रकार जल और तरंग एक ही हैं, उसी प्रकार मुझमें और गोपियों में अंतर नहीं है ।

इस प्रकार कवि जल और तरंग का उदाहरण देते हुए ब्रह्म और जीव की अद्वैतता स्पष्ट कर रहे हैं । माया के कारण जीव ब्रह्म से अलग दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में ये दोनों एक ही हैं ।

३) जगत् --

वल्लभ-संप्रदाय के अनुसार नंददासजी ने भी जगत् को ब्रह्म का अंश माना है । ब्रह्म के सत् अंश से जगत् निर्माण हुआ है । इसीकारण ब्रह्म के समान जगत् भी सत्य और नित्य है ।

" जो उनके गुन नाहिं और गुन भए कहाँ तें
बीज बिना तरु जमें मोहिं तुम कहौ कहाँ तें ।। " २५

यदि परमात्मा के गुण नहीं हैं तो फिर संसार में और गुणों की सत्ता कैसे हुई ? बीज के बिना पेड उग ही नहीं सकता । ब्रह्म के सगुण स्वरूप की अभिव्यक्ति जगत् के माध्यम से होती है ।

४) माया --

नंददासजी ने माया के दर्पण में प्रतिबिंब का सुन्दर वर्णन किया है । उनके अनुसार जगत् की रचना ब्रह्म विद्यामाया से करता है और अविद्यामाया से जीव संसार की निर्मिति करता है । नंददासजी ने माया के संबंध में कहा है ---

"वा गुन की परछाँह री माया दरपन बीच ।
गुन तें गुन न्यारे नहीं अम्ल वारि मिलि कीच ।।" [२६]

जिस प्रकार दर्पण और छाया का आस्तित्व रहता है, उसीप्रकार माया के आस्तित्व को भी स्वीकार किया गया है । संसार रुपी माया के दर्पण में ब्रह्म के गुण की परछाई है । गुण अलग नहीं है, केवल ब्रह्मरुपी निर्मल पानी में माया - रुपी कीचड मिलने के कारण ये अलग - अलग दिखाई देने लगते हैं । विद्यामाया जीव को भगवान की ओर प्रेरित करती है तो अविद्यामाया जीव को भ्रम में डालकर संसार में भटकाती है । इसलिए जीव अपने लक्ष्य को भूल जाता है ।

५) मोक्ष --

"नित्य सुख की प्राप्ति अथवा दुःखों के अभाव की स्थिति ही मोक्ष है ।" [२७] मुक्ति के मुख्यत: चार प्रकार माने गये हैं । जीव संसार के दुःखों - कष्टों से छुटकारा पाकर चारों में से किसी एक प्रकार की मुक्ति को प्राप्त करता है । नंददासजी ने मुक्ति के लिए भक्ति को सबसे श्रेष्ठ साधन माना है । नंददासजी की गोपियाँ सायुज्य मुक्ति को महत्व देती हैं । उन्हें भावजगत् में कृष्ण का साक्षात्कार करने से ही मुक्ति की अवस्था प्राप्त होती है --

"ऐसे में नँदलाल - रुप नैननि के आगे ।
आय गयो छबि छाय बने बीरी अरु बागे ।।
ऊधौ सों मुख मोरिकैं कहत तिनहिं सों बात ।
प्रेम-अमृत मुख तें स्रवत अंबुज-नैन चुचात ।।" [२८]

गोपियों के आगे कृष्ण का साक्षात् रुप आ गया । उनकी आँखों के सामने कृष्ण प्रत्यक्ष हो गये । गोपियाँ उद्धव को भूलकर उनसे मुँह मोडकर बैठ गयीं और कृष्ण से बातें करने लगीं । गोपियों के मुख से प्रेम के अमृत भरे शब्द निकलने लगे ।

गोपियों का यह प्रेम देखकर उद्धव के हृदय में लयात्मक मोक्ष की इच्छा जागृत हो गयी । वे ब्रज के मार्ग की धूल, लता अथवा झाडी आदि बन जाने की कामना करने लगे ।

" कै ह्वै रहौं द्रुम गुल्म लता बेली बन माहीं ।
आवत जात सुभाय परै मोपै परछाहीं ।।
सोऊ मेरे बस नहीं जो कछु करौं उपाय ।
मोहन होहिं प्रसन्न जो यहि वर माँगौ जाय ।।
कृपा करि देहि जौ ।। " [29]

इसप्रकार नंददासजी ने सुंदर तर्कों के द्वारा अपने दार्शनिक विचारों को व्यक्त किया है । वे सगुण ब्रह्म को निर्गुण ब्रह्म से श्रेष्ठ मानते हैं । उनकी भाषा के कारण ये तर्क तथा विचार कठिन नहीं लगते ।

नंददासजी ने ` भँवरगीत ` में गोपियों और उद्धव के माध्यम से कर्मव्यवस्था पर भी अपने विचार व्यक्त किये हैं । कर्म को भी गोपियों ने अच्छा नहीं माना है । प्रेम के सरल मार्ग के सामने वे योग, ज्ञान तथा कर्म की बातें स्वीकारने के लिए तैयार नहीं होतीं । वे कहती हैं ---

" प्रेम पियूषहिं छाँडि कै कौन समेटै धूरि ।।
गोपियाँ कर्म को ` धूरि ` कहती हैं । तब उद्धव ` धूरि ` शब्द लेकर अपने विचार व्यक्त करने लगते हैं । वे गोपियों के कहने पर सहजता से अपनी पराजय स्वीकार नहीं करते । वे बड़ी चतुराई से कहते हैं ---

" धूरि बुरी जौ होइ ईस क्यों सीस चढावै ।
धूरि क्षेत्र में आइ कर्म करि हरिपद पावै ।।
धूरिहि तें वह तन भयो धूरिहि सो ब्रह्मांड ।
लोक चतुर्दस धूरि के सप्त दीप नव खण्ड ।।
सुनौ ब्रजनागरी ।। " [30]

अगर धूलि बुरी हो तो उसे शंकर अपने सिर पर क्यों चढाते ? इस भूमि पर आकर कर्म करते हुए मनुष्य हरि का पद प्राप्त कर सकता है । इसी धूल से मनुष्य का शरीर बना है । धूल से ही सारी सृष्टि बनी है । चौदहों लोक, सातों द्वीप और नौ भूखण्ड भी धूल के कारण ही हैं ।

गोपियाँ इसपर अपना तर्क देते हुए कहती हैं कि इस कर्म-धूरि की बात तो कर्मवादी लोग ही जानते हैं। वे अपने कर्म की धूलि प्रेम के निर्मल अमृत में मिलाते हैं। भगवान के हृदयवास से ये सब कर्म-बंधन समाप्त हो जाते हैं। वे कहती हैं ---

"कर्म-धूरि की बात कर्म - अधिकारी जानैं।
कर्म - धूरि कों आनि प्रेम - अमृत में सानैं।।
तबही लौं सब कर्म है जब लौं हरि उर नाहिं।
कर्म बंध सब बिस्व के जीव विमुख ह्वै जाहिं।।
सखा ! सुनि स्याम के।।" 31

उद्धव फिर कर्म - मार्ग का ही पक्ष लेते हुए कहते हैं कि कर्म से सद्गति मिलती है। गोपियाँ इस बात का खण्डन करती हैं। उनका कहना है कि कर्म के साथ पाप-पुण्य, सुख-दुःख और नाना प्रकार के बंधन हैं। कर्मवादी लोग कहते हैं कि ऊँचे कर्म करने से स्वर्ग मिलता है और नीच कर्म से मनुष्य को नरक मिलता है। परन्तु असल में तो प्रभु - प्रेम के बिना सब कुछ व्यर्थ है। प्रभु के प्रेम के बिना सब विषयवासना की वस्तु बन जाता है --

"कर्म, पाप अरु पुन्य, लोह सोने की बेरी।
पायन बंधन दोउ कोउ मानौ बहुतेरी।।
ऊँच कर्म तें स्वर्ग है, नीच कर्म तें भोग।
प्रेम बिना सब पचि मुये विषयवासना रोग।।
सखा ! सुनि स्याम के।।" 32

इस पर उद्धव कहते हैं कि ब्रह्म निर्गुण है। वेदों में ब्रह्म के बारेमें 'नेति-नेति' ऐसा ही कहा गया है। सूर्य-चंद्र को हम हररोज देखते हैं, परंतु उनके वास्तविक रूप-गुण नहीं जानते। वैसे ही भगवान के वास्तविक रूप को हम नहीं जान सकते। इसपर गोपियाँ चतुराई से कहती हैं कि जैसे आकाश में सूर्य अपने तेज के कारण छिपा रहता है, वैसे ही ब्रह्म भी अपने सगुण-साकार रूप में रहता है। साधारण दृष्टि से ब्रह्म का सगुण - साकार रूप नहीं दिखाई देता। इस ब्रह्म को देखने के लिए दिव्य दृष्टि की आवश्यकता होती है। प्रेम की आँखों के बिना इसे

देखा नहीं जा सकता । जिनके पास प्रेम की आँखें नहीं, उन्हें वह कभी नहीं दिखाई देता । वे कर्म के कूप में पडे रहते हैं --

"तरनि अकास प्रकास जाहि में रह्यौ दुराई ।
दिव्य दृष्टि बिनु कहाँ कौन पै देख्यौ जाई ।।
जिनके वे आँखें नहीं देखैं क्यों वह रूप ।
क्यों उपजै बिस्वास जे परे कर्म के कूप ।।
सखा ! सुनि स्याम के ।।" [३३]

उद्धव आगे चलकर गोपियों से कहते हैं कि तुम व्यर्थ ही कर्म को बुरा मानती हो । वास्तव में भक्ति भी एक प्रकार का कर्म ही है । कर्म करते रहने से ही धीरे-धीरे कर्म का नाश हो जाता है । तब आत्मा निष्कर्म होकर निर्गुण ब्रह्म में लीन हो जाती है ।

गोपियाँ इसपर सुंदर तर्क प्रस्तुत करती हैं । वे कहती हैं, `जब भगवान में कर्म नहीं है तो कर्म के बन्धन में पडा ही क्यों जाये ?`

उद्धव और गोपियों के बीच वाद-विवाद चल रहा था । गोपियाँ उद्धव से नास्तिक कहकर वाद-विवाद बंद कर देती हैं । वे उद्धव से मुँह मोड लेती हैं । और कहती हैं कि जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है, उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं रहती । प्रत्यक्ष कृष्ण ही हमारे ब्रह्म हैं ।

इस प्रकार गोपियाँ कर्ममार्ग को योग्य मार्ग नहीं मानतीं । कर्म के कारण मनुष्य के मन में फल की आशा रहती है । निष्काम कर्म करना कठिन हो जाता है । इसलिए ब्रह्मप्राप्ति का कर्म यह श्रेष्ठ मार्ग नहीं है ।

नंददास के `भँवरगीत` का कलापक्ष --

मनुष्य अपने भावों को भाषा के माध्यम से व्यक्त करता है । किसी भी साहित्यिक रचना के मुख्यत: दो पक्ष होते हैं --

१) भाव पक्ष
२) कला पक्ष ।

भाव पक्ष के अंतर्गत उस रचना में जो भाव रहते हैं उसका वर्णन किया जाता है और कला पक्ष के अंतर्गत उस रचना की भाषा, छंद, अलंकार, काव्य-रूप, शब्दसमूह आदि का विचार किया जाता है।

भाषा के द्वारा विविध विचार, कल्पनायें आदि को सरलता तथा सहजता से व्यक्त किया जाता है। भक्तिकाल में कवि लोग अपने भावों को ब्रजभाषा के माध्यम से व्यक्त करते थे। वल्लभ संप्रदाय की उत्तर भारत में स्थापना होने के बाद कृष्ण भक्ति को अभिव्यक्त करने के लिए ब्रजभाषा का उपयोग किया जाता था। 'इस युग के भ्रमरगीत में कला की अपेक्षा भावों पक्ष पर ही अधिक बल दिया गया है तथापि कलापक्ष की शिथिलता कहीं भी नहीं मिलती।'[34] नंददास ने अपनी रचनाओं के लिए ब्रजभाषा का ही उपयोग किया है। नंददास ने ब्रजभाषा को और भी अधिक माधुर्यपूर्ण बना दिया। नंददास के भँवरगीत में सूर की अपेक्षा भाषा का लालित्य अधिक प्रभावशाली है।

'भँवरगीत' में नंददासजी ने संवादों के माध्यम से विचार, तर्क, दार्शनिक तत्व, गोपियों का विरह, उपालंभ का भाव आदि को सुंदरता से चित्रित किया है। वे कवि, आचार्य, भावुक भक्त और पंडित एकसाथ थे। सरल शब्दों में हृदय के सूक्ष्म भावों को अभिव्यक्त करने में नंददास निपुण थे। शृंगार रस की रचना के अनुसार प्रसाद तथा माधुर्य से युक्त गुणों का समावेश उनकी रचनाओं में हो गया है। भावों की कोमलता के अनुसार सुकोमल शब्दों का प्रयोग करने में वे अत्यंत कुशल थे। 'नंददास के समकालीन कवियों से लेकर आज तक नंददास के ही भँवरगीत की शैली में अनेक कवियों ने अपनी लेखनी चलाई, पर कोई भी अन्य भँवरगीत नंददास के भँवरगीत के टक्कर का नहीं बना।'[35]

भाषा --

नंददासजी ने 'भँवरगीत' के लिए ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। 'भँवरगीत' में नंददास की भाषा प्रौढ बन गई है। कर्ण-कटु, ट वर्गों, संयुक्त व्यंजनों से युक्त 'भँवरगीत' की भाषा नहीं है। ऐसी भाषा को नंददासजी ने

दूर रखने का ही प्रयत्न किया है ।

"भँवरगीत" के पहले पक्ष में दार्शनिक विचारों को प्रस्तुत किया गया है । दार्शनिक विचारों को पांडित्यपूर्ण भाषा में व्यक्त किया गया है, लेकिन गोपियों के विरह-भाव का चित्रण करते समय भाषा फिर भावमयी बन गयी है । भाषा पर उनका असामान्य अधिकार था । नंददास के संबंध में प्रसिद्ध उक्ति --

"आन कवि गढिया
नंददास जडिया"

सचमुच ही अत्यंत योग्य है । घडों को गढने का काम मोटा और स्थूल रहता है परन्तु गहनों को जडने का काम अत्यंत सूक्ष्म रहता है । यह काम अत्यंत कलापूर्ण होता है, इससे गहनों की शोभा बढ जाती है । यही काम नंददासजी ने किया है और भाषा का सौन्दर्य बढाने का प्रयत्न किया है । अपने दार्शनिक विचार व्यक्त करते हुए नंददासजी ने तर्कयुक्त भाषा का प्रयोग किया है ---

"बेदहु हरि के रूप, स्वास मुख तें जो निसरै ।
कर्म क्रिया आसक्ति सबै पछिली सुधि बिसरै ।।
कर्म मध्य ढूँढै सबै किनहिं न पायौ देखि ।
कर्म-रहित ही पाइयै तातें प्रेम बिसेखि ।।
सखा ! सुनि स्याम के ।।" [३६]

गोपियों की विरहभावना को उतनीही भावमयी भाषा में व्यक्त किया गया है । गोपियाँ व्याकुल होकर कहती हैं ---

"अहो ! नाथ ! रमानाथ और जदुनाथ गुसांई ।
नँदनंदन बिडरात फिरत तुम बिनु बन गाईं ।।
काहे न फेरि कृपाल ह्वै गौ ग्वालन सुख लेहु ।
दुःख-जल-निधि हम बूडहीं कर - अवलंबन देहु ।।
निठुर ह्वै कहा रहे ? ।।" [३७]

नंददास की भाषा में अनेक स्थलों पर कोमलता, संगीतात्मकता, चित्रात्मकता का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है । उदा. ---

विह्वल ह्वै धरनी परीं ब्रज-बनिता मुरझाय ।
दै जल छींट प्रबोधहीं ऊधौ बैन सुनाय ।।
सुनौ ब्रजनागरी ।। [38]

शब्द --

नंददासजी का संस्कृत तथा ब्रज दोनों भाषाओं पर समान अधिकार था । नंददास ने अपने भावों को अभिव्यक्त करने के लिए तत्सम, तद्भव, देशज और विदेशी सभी प्रकार के शब्दों का आवश्यकता के अनुसार उपयोग किया है --

१) तत्सम शब्द --

संस्कृत के मूल शब्द जब ज्यों के त्यों ग्रहण कर लिये जाते हैं, तब उन्हें तत्सम शब्द कहा जाता है । नंददासजी के `भँवरगीत` में अनेक तत्सम शब्द आये हैं । जैसे -- ग्राम, गृह, प्रेम, ब्रह्म, श्रुति, नासिका, अखिल, नेति, कर्म, धर्म, त्रिभुवन, वासुदेव, अच्युत, गो, मनि, अधिकार आदि ।

२) तद्भव शब्द ---

संस्कृत के तत्सम शब्दों का विकसित रूप तद्भव है । संस्कृत के शब्द काल - क्रमानुसार तद्भव बन जाते हैं । विरह - भावना की सशक्त अभिव्यक्ति के लिए तद्भव शब्दों का प्रयोग नंददासजी ने किया है । उदा. सुमरन, पाउ, बैन, छेदि, आध, मूठि, निज, लोह, दारुन, हाथ आदि ।

३) अर्धतत्सम शब्द ---

अर्धतत्सम शब्द वे होते हैं जो निकट भूतकाल में तत्सम शब्दों से विकसित हुए हैं । उदा. ऊधौ, उपदेस, सलि, गुन, ध्रुजा, स्याम, संदेश, परिकर्मा, सगुण, अकास आदि ।

४) विदेशी --

जो किसी अन्य भाषा से या बाहर से आये हैं, उन्हें विदेशी कहा जाता है । दो भिन्न संस्कृतियों के मिलन से दोनों देशों की भाषाओं के शब्द समूह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं । नंददासजी के `भँवरगीत` में अरबी-फारसी शब्द न के बराबर मिलते हैं । `नंददास ग्रंथावली` की भूमिका में शुक्लजी ने लिखा है --`नंददास की भाषा में विदेशी शब्दावली का एक प्रकार से पूर्ण बहिष्कार मिलता है । फारसी तथा अरबी के बहुत ही थोडे तद्भव शब्द प्रयत्नपूर्वक खोजने पर ही कवि की कृतियों में निकाले जा सकते हैं और वे भी ऐसे रूप में प्रयुक्त हुए हैं कि उनकी व्युत्पत्ति से अपरिचित साधारण पाठक को उनके विदेशी होने का भान भी नहीं होता ।`

मुहावरे और लोकोक्तियाँ --

मुहावरे और तथा कहावतों के माध्यम से नंददासजी ने भाषा को अधिक सुंदर बनाने का प्रयत्न किया है । भावना की तीव्रता को प्रकट करने के लिए मुहावरों का प्रयोग किया जाता है । `भँवरगीत` में अनेक लोकोक्तियाँ तथा मुहावरों का प्रयोग हुआ है । जैसे ; कौन समेटैं धूरि, हिय लौन लगावौ, कृत-कृत ह्वै गई, हीरा आगे काँच, प्रेम को मारग सूधो, पारस परसैं लोह तुरंत कंचन ह्वै जाई, घर आयो नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं आदि ।

संगीतात्मकता --

अष्टछाप के सभी कवियों ने कृष्ण लीलाओं का गान किया है । कृष्ण मंदिर में ये रचनायें गायी जाती थीं । इसी कारण ये अनेक रागरागिनियों में बंधी हुई हैं । सूरदास की तरह नंददास भी कृष्ण-मूर्ति के सामने भजन करते थे । भाषा को उन्होंने श्रुतिमधुर, प्रवाहपूर्ण और संगीतमय बनाया है । मुक्तक पदों में संगीत द्वारा भावों की अभिव्यक्ति सुन्दर बन गयी है ।

LIBRARY KOLHAPUR

छन्द --

`भँवरगीत की रचना मिश्रित छन्दों में हुई है। इसमें पहले, एक रोला, फिर एक दोहा और अंत में एक टेक लगा दी गई है। नंददास ने काव्य में अधिकतर रोला छन्द का प्रयोग किया है। `भँवरगीत` का छन्द संगीतमय तथा भँवरगीत नाम को सार्थक करता है।

डॉ. रामकुमार वर्मा ने कहा है -- `भँवरगीत` का छन्द रोला और दोहा के मिश्रण से बनाया हुआ एक नवीन छन्द है। इस छन्द के अंत में दस मात्रा की एक छोटी-सी पंक्ति है, जिससे भावपूर्ति के साथ छन्द की संगीत पूर्ति भी होती है।`

रोला --

रोला यह एक मात्रिक छन्द है। इसके प्रत्येक चरण में ११, १३ इस प्रकार २४ मात्राएँ होती हैं। चरण के अंत में कभी - कभी दो गुरु या चार लघु मात्राएँ रखी जाती हैं।

दोहा --

यह एक अर्धसम मात्रिक छन्द है। इसके पहले और तीसरे चरणों मे १३-१३ मात्रायें और दूसरे - चौथे चरणों में ११-११ मात्राएँ होती हैं।

टेक --

पद के अंत में दस मात्राओं की टेक दी जाती है। उदा. ---

रोला
कहु हरि के रूप स्वास मुख तें जो निसरै।
-UU UU - -U -U UU - - UU-
कर्म क्रिया आसक्ति, सबै पछिली सुधि बिसरै।।
U- U- -U- U- UU- UU UU-

दोहा
कर्म मध्य ढूँढै सबै किनहिं न पायौ देखि।
U- U- -- U- UUU U --- -U
कर्म रहित ह्वै पाइयै, तातें प्रेम बिसेखि।।
U- UUU - -U- ---U U-U

टेक
सुनौ ब्रजनागरी।।
U- UU-U-

अलंकार --

काव्यसौन्दर्य बढ़ाने के लिए अलंकारों का प्रयोग किया जाता है। 'भँवरगीत' में अर्थालंकारों की अपेक्षा शब्दालंकारों का अधिक प्रयोग किया है।

१) अनुप्रास अलंकार --

जब वाक्य में अथवा पद में एक ही व्यंजन की अथवा अनेक व्यंजनों की पुनरावृत्ति होती है, तब उसे 'अनुप्रास अलंकार' कहते हैं। नंददासजी ने अपने 'भँवरगीत' में अनुप्रास अलंकार का अधिक प्रयोग किया है। उदा. सुनत-स्याम, छबि-छाय, प्रेम-पियूषी आदि।

२) यमक अलंकार --

जिस समय शब्द अथवा वाक्यांश फिर फिर आते हैं, लेकिन उनके अर्थों में भिन्नता दिखलाई देती है, तब उसे यमक अलंकार कहते हैं --

'ताहि बतावहु जोग जोग ऊधौ जेहि पावौ।'

इस पंक्ति में पहले जोग का अर्थ योग है और दूसरे जोग का अर्थ योग्य है।

३) रूपक अलंकार --

उपमेय और उपमान इन दोनों में जब एकरूपता बता दी जाती है, उपमेय को ही उपमान का रूप दिया जाता है, तब उसे रूपक अलंकार कहते हैं।

उदा. वा गुन की परछाँह री माया दर्पण बीच।

४) अर्थांतरन्यास --

जहाँ प्रस्तुत अर्थ का अप्रस्तुत अर्थ द्वारा समर्थन किया जाता है, वहाँ अर्थांतरन्यास अलंकार की निर्मिति होती है।

उदा --"पुनि कहँ सब तें साधुसंग उत्तम है भाई।
पारस परसें लोह तुरंत कंचन ह्वै जाई।।
गोपी प्रेम प्रसाद सों हो हो सीख्यौ आय।"

५) लोकोक्ति --

बीच-बीच में लोकोक्तियों का भी प्रयोग किया गया है । उदा..

` घर आयौ नाग न पूजहीं बाँबी पूजन जाहिं । `

६) दृष्टांत --

जहाँ उपमेय और उपमान वाक्यों तथा उन दोनों के धर्म में बिंब - प्रतिबिंब भाव हो । उदा...

` जो उनके गुन नाहि और गुन भये कहाँ ते ।
बीज - बिना तरु जमे मोहि तुम कहाँ कहाँ ते ।। `

इन अलंकारों के सिवा अन्य अनेक अलंकारों का प्रयोग ` भँवरगीत ` के अंतर्गत किया गया है ।

इस प्रकार नंददासजी के ` भँवरगीत ` का कला-पक्ष समृद्ध है । भाषा, छन्द, अलंकार, मुहावरे, कहावतें आदि सभी दृष्टि से यह ` भँवरगीत ` श्रेष्ठ बन गया है ।

निष्कर्ष ---

इसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि नंददासजी की अनेक रचनाओं में ` भँवरगीत ` एक महत्वपूर्ण रचना है । ` श्रीमद्भागवत ` का आधार लेते हुए भी कवि ने इसका सिर्फ अनुवाद नहीं किया है तो अपनी कल्पनाशक्ति के द्वारा ` भँवरगीत ` में अनेक मौलिक परिवर्तन भी किये हैं । केवल ७५ पदों में अपने उद्देश्य को स्पष्ट करने में वे सफल बन गये हैं ।

नाटकीय शैली के कारण ` भँवरगीत ` अधिक सुंदर बन गया है । इसमें कथावस्तु के द्वारा निर्गुण पर सगुण ब्रह्म की विजय दिखलाई है । ज्ञान, योग और कर्म की अपेक्षा प्रेम और भक्ति को श्रेष्ठ माना गया है । ज्ञान - योग की क्लिष्ट बातें जनता की समझ में नहीं आती थीं । इसलिए साधारण जनता के

लिए ब्रह्म प्राप्ति का योग्य मार्ग भक्ति ही है, ऐसा नंददासजी का कहना था ।

नंददास वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित होने के कारण उन पर पुष्टिमार्गीय भक्ति का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है । ब्रह्म, जीव, जगत्, माया, मोक्ष आदि संबंधी क्लिष्ट विचार भी नंददासजी ने सरल भाषा में व्यक्त किये हैं । इसमें गोपियों तथा उद्धव के तर्क सुंदर बन पडे हैं । कर्मवाद की अनुपयोगिता इसमें स्पष्ट की गई है ।

नंददासजी ने भँवरगीत में दार्शनिक विचारों के बाद विरह शृंगार का विवेचन किया है । गोपियों के तर्क, उपालंभ, व्यंग्य, विरह आदि सभी में बुद्धि पक्ष और हृदय पक्ष का सुन्दर समन्वय हुआ है । इसमें गोपियाँ भोली-भाली नहीं हैं, तो बुद्धिमानी हैं । गोपियों का कृष्ण के प्रति प्यार देखकर वे चौंक जाते हैं । गोपियाँ उद्धव को अपने तर्कों के माध्यम से पराजित कर देती हैं । जो उद्धव निर्गुण ब्रह्म तथा ज्ञान का संदेश देने आये थे वे प्रेमी भक्त बनकर मथुरा वापस चले जाते हैं ।

नंददासजी के ' भँवरगीत ' का कलापक्ष भी अत्यंत सशक्त बन पडा है । ' भँवरगीत ' के लिए उन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है । ' भँवरगीत ' की भाषा को देखकर ' आन कवि गढिया , नंददास जडिया ' यह उक्ति सार्थक लगती है । ' भँवरगीत ' में नंददासजी की भाषा प्रौढ बन गई है । तत्सम, तद्भव, अर्धतत्सम शब्दों का प्रयोग सहज हुआ है । भाषा सरल, सहज, सरस तथा बोधगम्य बन गई है । उन्होंने प्रसंग के अनुसार भाषा का प्रयोग किया है । ' भँवरगीत ' के लिए रोला, दोहा और टेक का मिश्रित छन्द प्रयुक्त किया गया है । अलंकारों के कारण ' भँवरगीत ' का सौन्दर्य बढ गया है ।

इस प्रकार नंददासजी का ' भँवरगीत ' भाव पक्ष तथा कला पक्ष की दृष्टि से सुन्दर बन पडा है ।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

१) हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
ले.डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन मंदिर, अलिगढ
प्रथम संस्करण
पृष्ठ क्र. ३ ।

२) नंददास और उनका भँवरगीत
ले.डॉ. पूर्णमासी राय
(पुरोवचन) से विश्वनाथ प्रसाद मिश्र
बिहार पब्लिशिंग हाऊस, खजांची रोड पटना-४
प्र.संस्क. १९६६
पृष्ठ क्र. ग ।

३) रासपंचाध्यायी और भँवरगीत
प्रो. विश्वंभर `अरुण`
अशोक प्रकाशन, नई सडक दिल्ली-६
प्र.संस्क., १९६६
पृष्ठ क्र. ४७ ।

४) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५१ ।

५) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्क., सं. २०१४ , पृष्ठ क्र. १५४ ।

६) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५५ ।

७) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५५ ।

८) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५६ ।

९) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५७ ।

१०) नंददास
कामताप्रसाद साहू
विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा-३
प्र. संस्क., १९६६
पृष्ठ क्र. १०९ ।

११) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - २०१४
पृष्ठ क्र. १५७ ।

१२) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५८ ।

१३) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६०-६१ ।

१४) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६२ ।

१५) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६२-१६३ ।

१६) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६४ ।

१७) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६६ ।

१८) भँवरगीत विमर्श
डॉ. भगवानदास तिवारी
भूमिका से - भगिरथ मिश्र
स्मृति प्रकाशन - ६१, महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्र. संस्क., १९७२
पृष्ठ क्र. १० ।

१९) नंददास और उनका भँवरगीत
ले. डॉ. पूर्णमासी राय
बिहार पब्लिशिंग हाउस, सजांची रोड पटना
प्र. सं. १०६६
पृष्ठ क्र. ३६ ।

२०) हिन्दी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
ले. डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन मंदिर, अलिगढ
प्रथम संस्करण
पृष्ठ क्र. ३०२ ।

२१) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - २०१४
पृष्ठ क्र. १५३ ।

२२) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण २०१४
पृष्ठ क्र. १५३ ।

२३) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५४ ।

२४) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६६ ।

२५) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५५ ।

२६) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५५ ।

२७) नंददास का भँवरगीत - विवेचन और विश्लेषण
डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
चैतन्य प्रकाशन, कानपुर
प्रथम संस्क., १९६२
पृष्ठ क्र. ७५ ।

२८) नंददास ग्रंथावली
संपा. डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५७ ।

२९) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १६४ ।

३०) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५४ ।

३१) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५४ ।

३२) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५५ ।

३३) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५६ ।

३४) हिंदी में भ्रमरगीत काव्य और उसकी परंपरा
ले. डॉ. स्नेहलता श्रीवास्तव
भारत प्रकाशन अलिगढ
प्रथम संस्करण
पृष्ठ क्र. १६३ ।

३५) भँवरगीत विमर्श
डॉ. भगवानदास तिवारी
स्मृति प्रकाशन - ६१, महाजनी टोला, इलाहाबाद
प्रथम संस्करण १९७२
पृष्ठ क्र. १६२-१६३ ।

३६) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५६ ।

३७) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी
दूसरा संस्करण सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५७ ।

३८) नंददास ग्रंथावली
डॉ. ब्रजरत्नदास
नागरी प्रचारिणी सभा, काशी,
दूसरा संस्करण - सं. २०१४
पृष्ठ क्र. १५३ ।

..